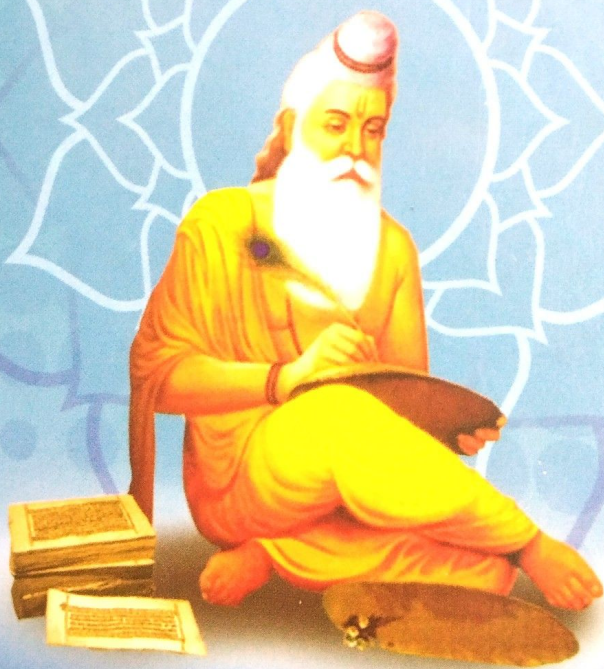


ॐ

अथर्ववेद-संहिता

शब्दार्थ-भावार्थ-यथोचितटिप्पणीसमन्विता

सन्देश-तरङ्गें स्रष्टा ने, जो सृष्टि-हेतु पहुँचाई।
ऋषि-माध्यम से वे ही बनकर ऋचा वेद में आई ॥



डॉ० देवीसहायपाण्डेय: 'दीपः'

भूमिका

अथर्ववेद के नामगत भेद

ऋग्वेद ऋचाओं-स्तुतिपरक मन्त्रों की अधिकता के कारण, यजुर्वेद यजनप्रधान अथवा यजुष् (गद्यांश) प्रधान मन्त्रों के आधिक्य के कारण और सामवेद 'साम' अर्थात् संगीत प्रधान मन्त्रों के संग्रह के कारण, ये तीनों वेद अपने-अपने नामगत वैशिष्ट्य को सहज ही स्पष्ट कर देते हैं; किन्तु चतुर्थ वेद अथर्ववेद के नाम से उसके नामगत वैशिष्ट्य का वैसा स्पष्टीकरण नहीं हो पाता है, जैसा कि अन्य तीनों वेदों का हो जाता है। अथर्ववेद को अथर्ववेद क्यों कहा गया है ? इस विषय में मत-भेद दिखाई देते हैं।

सामाजिक सौमनस्य, लोक-कल्याण, पर्यावरण-शोधन, सृष्टिसञ्चालिका दिव्यशक्तियों के स्तवन को दृष्टि में रखकर वेदों में यजन-कर्म को व्यापक बनाने के लिए, उसके सम्यक् सञ्चालन के लिए चार प्रमुख पुरोधाओं अर्थात् यज्ञ कर्म-सञ्चालन-कर्ताओं की व्यवस्था की गयी थी—1) होता, 2) अध्वर्यु, 3) उद्गाता, 4) ब्रह्मा।

'होता' सम्बोधन, युक्त पुरोधा ऋग्वेद के, मन्त्रों से सृष्टिसंचालिका दिव्य शक्तियों का आवाहन करता था, 'अध्वर्यु' यजुर्वेद के मन्त्रों से आहूत देवों को उनका भोज्य हव्यान्न प्रदान करता था। 'उद्गाता' संगीतबद्ध स्वर-लहरी से आहूत देवों का स्तवन एवं मनोरञ्जन करता था। चौथा पुरोहित 'ब्रह्मा' होता था, जो समग्र याज्ञिक प्रक्रियाओं का सूक्ष्म निरीक्षण करता रहता था, ताकि कहीं कोई त्रुटि न रह जाये। याज्ञिक प्रक्रियाओं में यज्ञ-विरोधी आसुरी शक्तियों द्वारा आभिचारिक क्रियाओं जादू-टोने, टोटके आदि से पवित्र यज्ञ कर्म को अपवित्र कर उसमें अवरोध न उत्पन्न किया जा सके, एतदर्थ जो नामित पुरोहित नियुक्त होता था उसे 'ब्रह्मा' कहा जाता था। उसे अथर्ववेद का विशेषज्ञ होने के साथ ही तीनों वेदों का ज्ञाता होना अनिवार्य था। 'ब्रह्मा' नामधारी पुरोहित यज्ञ का अध्यक्ष होता था। याज्ञिक त्रुटियों, अन्य अनिष्टों और अवरोधों को दूर करना 'ब्रह्मा' का महत्वपूर्ण कर्म था। वह अथर्ववेद का विशेषज्ञ होता था, इसलिये अथर्ववेद को 'ब्रह्मा' का वेद अथवा 'ब्रह्मवेद' कहा गया है। अथर्ववेद में ब्रह्मचिन्तन विषयक दार्शनिक सामग्री के आधिक्य के कारण अथर्ववेद को 'ब्रह्मवेद' कहा गया है; ऐसा भी कुछ विद्वानों का मत है।

अथर्ववेद में राजकर्म से सम्बन्धित सूक्तों का भी बाहुल्य है। शतपथब्राह्मण में 14.8, 14.1-4 में अथर्ववेद के लिए 'क्षत्रवेद' नाम का प्रयोग किया गया है। इस नाम के औचित्य पर विचार करने से प्रतीत होता है कि चतुर्थवेद अथर्ववेद क्षत्रियों, शासकों के लिए अधिक उपयोगी था। अर्थनीति, दण्डनीति, कर-व्यवस्था विषयक मन्त्रों का भी पर्याप्त समावेश इस वेद में है।

अथर्ववेद में विभिन्न रोगों और औषधियों का भरपूर वर्णन है, इसलिए इसे 'भियर्ग्वेद' भी कहा गया है।

अथर्ववेद में भैषज्यकर्म-सम्बन्धी अमूल्य सिद्धान्तों का समावेश है, जिनका विकास आगे चलकर सुश्रुत, चरक आदि संहिताओं एवं आयुर्वेद ग्रन्थों में हुआ है।

अथर्वजिरोवेद' अथवा अथर्वजिर्जरस वेद अथर्ववेद का प्राचीनतम नाम माना जाता है, क्योंकि इसमें अथर्व और अजिर्जर नामधारी दो विशिष्ट ऋषियों के मन्त्रों का विशेष संकलन है, इसलिए इन दोनों ऋषियों के नाम पर चतुर्थवेद को 'अथर्वजिर्जरस' वेद कहा गया है। अधिकांश विद्वानों का यह मत है कि इस वेद में और भी अनेक ऋषियों के मन्त्र हैं, इसलिए इसे व्यक्ति से नहीं, मन्त्रों की प्रकृति से जोड़कर देखा जाना चाहिए। अथर्ववेद में अथर्वन् तथा अजिर्जर संज्ञक दो प्रकार की भाव सामग्रियाँ समाविष्ट हैं, इसलिए यह वेद अथर्वजिर्जरस वेद कहलाता है। सुख-शान्ति, सौहार्द, सौमनस्य सम्बन्धी मन्त्र 'अथर्व' हैं। 'थर्व' शब्द का अर्थ कम्पन, हिंसा, अशांति, अधीरता और 'अथर्व' शब्द का अर्थ स्थिरता, दृढ़ता, अहिंसा, शान्ति आदि का द्योतक है। मारण, मोहन, उच्चाटन, अभिचार, जादू, टोटका सम्बन्धी मन्त्र अपनी प्रकृति के कारण घोर कर्म के अन्तर्गत आते हैं और अपने को 'अजिर्जरस' प्रकृति से जुड़े हुए दिखाते हैं। अथर्ववेद में ऐसे मन्त्रों का विशिष्ट समावेश है।

'अथर्वन्' शब्द शान्तकर्म एवं 'अजिर्जरस' शब्द घोर कर्म का प्रतिपादक बनकर प्रयुक्त हुआ है, वस्तुतः अथर्वन् तथा अजिर्जरस शब्दों को ऋषि नाम से नहीं, अपितु मन्त्रों की प्रकृति से जोड़कर देखना अधिक समीचीन होगा। जैसा कि पिछली पंक्तियों में कहा गया है कि 'थर्व' शब्द का अर्थ कम्पन, अशांति, अस्थिरता आदि होता है और निषेधार्थक 'अ' के जोड़ देने पर बना 'अथर्व' शब्द अकम्पन, शान्ति, स्थिरता आदि का प्रतिपादक बन जाता है। इस प्रकार वह वेद, जो जीवन को निर्भय, निश्चिन्त, कम्पन-रहित, शान्त, सुस्थिर बना दे, वह वेद 'अथर्ववेद' है। मनुष्य केवल आत्मा ही नहीं, शरीर भी है। पुष्ट और जाग्रत आत्मा के लिए पुष्ट और स्वस्थ शरीर आवश्यक है। रुग्ण शरीर में आत्मज्ञान पनप नहीं सकता है। परलोक की राह इसी लोक से होकर जाती है। आत्म-ज्ञान के साथ लोक-ज्ञान भी आवश्यक है। लोक के अन्तर्गत स्वस्थ शरीर, सुखी-स्वस्थ वातावरण, सुखी परिवार, संगठित सौहार्दपूर्ण समाज, सुसम्पन्न सुशासित राष्ट्र और उनके साधन स्वरूप लौकिक ज्ञान का होना आवश्यक है।

यजुर्वेद में भी लौकिक ज्ञान को 'अविद्या' और पारलौकिक ज्ञान को 'विद्या' कहा गया है एवं दोनों को जीवन के लिए आवश्यक बताया गया है। 'अविद्या' की उपासना लौकिक जीवन-रक्षण के लिए और विद्या की उपासना आध्यात्मिक भाव-भूमि को पुष्ट बनाने के लिए आवश्यक है, अस्तु अविद्या और विद्या दोनों का ज्ञान, दोनों की उपासना सन्तुलित जीवन-यापन के लिए आवश्यक है—

विद्यां चाविद्यां च यस्तद्वेदोभयं सह ।

अविद्याया मृत्युं तीर्त्वा विद्यायाऽमृतमश्नुते ॥ (यजुर्वेद 40.14)

इस प्रकार सफल और सम्पूर्ण जीवन भौतिक और आध्यात्मिक ज्ञान के समावेश और संतुलन पर निर्भर है। जन-सामान्य के जीवन को उपयोगी और उर्वर बनाने हेतु सम्बन्धित लौकिक विषयों का जितना समावेश अथर्ववेद में है, उतना अन्य तीनों वेदों में नहीं है; किन्तु इसका आशय यह नहीं लिया जाना चाहिए कि अन्य वेद लौकिक ज्ञान-शून्य हैं और अथर्ववेद में अध्यात्म ज्ञान का अभाव है। अथर्ववेद में भी अध्यात्म विषयक सूक्तों का मनोहारी वर्णन है, जिन्हें पढ़कर भाव-विभोर मन-मयूर आनन्द-वाटिका में मत्त नर्तन करने लग जाता है। ऐसे कुछ सूक्त हैं—2.1, 4.2, 4.16 आदि। यह अवश्य है कि लौकिक या ऐहिक जीवन सम्बन्धी जितनी सामग्री अथर्ववेद में है, उतनी अन्य वेदों में नहीं है।

परिवार नागरिक गुणों की प्रथम पाठशाला है। पारिवारिक सौहार्द की मनोरम आदर्श झाँकी की दिव्य घटा 3.30 में द्रष्टव्य है। अथर्ववेद के चौदहवें काण्ड में आदर्श दाम्पत्य की मनोरम प्रस्तुति है। अथर्ववेद के बारहवें काण्ड का 63 मन्त्रीय प्रथम सूक्त संसार का प्रथम राष्ट्रगीत है। यह सूक्त सम्पन्न समुन्नत आदर्श राष्ट्र का चित्ताकर्षक प्रारूप प्रस्तुत करता है।

अथर्ववेद में विषय वैविध्य है। सन्तुलित जीवन की झाँकी है। इस वेद में लौकिक और पारलौकिक दोनों विषयों का समावेश है। आचार्य सायण ने अपनी भाष्यभूमिका में स्वयं लिखा है—'आमुष्मिक फलदायी वेदत्रयी की व्याख्या के उपरान्त ऐहिक और आमुष्मिक दोनों प्रकार के फल प्रदान करने वाले चतुर्थवेद (अथर्ववेद) की व्याख्या करूँगा।' (सायण, भाष्यभूमिका 9-20)

अथर्ववेद के प्रतिपाद्य विषय

कौशिक सूत्रानुसार अथर्ववेद के चौदह वर्ण्य विषय हैं—1) यज्ञानुष्ठान एवं संस्कार, 2) पौष्टिक कर्म, 3) अनिष्ट निवारण एवं शान्ति कर्म, 4) समृद्धि, 5) राज-व्यवस्था, 6) अभ्युदय एवं अभीष्ट सिद्धि, 7) शिक्षा, 8) सौमनस्य ऐक्य भाव, 9) भैषज्य, 10) आभिचारिक प्रयोग, 11) स्त्री-कल्याण, 12) गृहसज्जा, 13) प्रायश्चित्त-विधान, 14) भविष्य कथन। कालान्तर में इन विषयों की विंशद विवेचना हुई और पूर्वोक्त 14 विषय बढ़कर, 29 हो गये, जो इस प्रकार हैं—

1) पाक यज्ञ, 2) मेधा-जनन, 3) ब्रह्मचर्य-सिद्धि, 4) ग्राम संवर्द्धन, 5) प्रजा, पशु, पुत्र, कलत्रादि की समृद्धि, 6) सामञ्जस्य ऐक्य, 7) राज-कर्म, 8) शत्रु-सादन, 9) संग्राम-विजय, 10) शस्त्र परिहरण, 11) सैन्य-स्तम्भन, 12) सैन्य-परिरक्षण, 13) जय-पराजय-विचार, 14) सेनापत्यादि कर्म, 15) सैन्य-भेद-नीति, 16) राजा की पुनः स्थापना,

17) प्रायश्चित्त कर्म, 18) कृषि आदि का संवर्द्धन, 19) गृहस्थ अभ्युदय, 20) भैषज्य कर्म, 21) संस्कार, 22) सभा-जय-साधन, 23) वृष्टि-प्रयोग, 24) अभ्युदय कर्म, 25) वाणिज्य-कर्म, 26) ऋण-विमोचन, 27) अभिचार-निवारण, 28) आयुष्य कर्म, 29) यज्ञानुष्ठान ।

अथर्ववेद का महत्त्व

निष्कर्ष रूप में कहा जा सकता है कि अथर्ववेद विषय-वैविध्य समेटे हुए, जीवन को समग्रता से देखने का विश्वासी है, समर्थक है । अथर्ववेद के सन्तुलित दृष्टिकोण और महता को ध्यान में रखकर कुछ आचार्यों ने इसे प्रथमवेद के रूप में मान्यता दी है—

‘तत्र वेदाश्चत्वारः प्रथमोऽथर्ववेदः’ ।

(न्यायमञ्जरी, जयन्त भट्ट, पृ० 237-38)

अनिष्ट निवारण, उपद्रवहीन राष्ट्र के प्रारूप की परिकल्पना इसका दुर्लभ प्रतिपाद्य है । अथर्व-परिशिष्ट में तो यहाँ तक कहा गया है कि—अथर्ववेद का ज्ञाता, शान्तिकर्म-पारगामी पुरोहित जिस राष्ट्र में रहता है, वह राष्ट्र उपद्रवों से रहित होकर वृद्धि को प्राप्त करता है । इसलिए राजा को चाहिए कि वह अथर्ववेदविद् तथा जितेन्द्रिय पुरोहित का दान-सम्मान पूर्वक नित्य पूजाचर्चन करे—

यस्य राज्ञो जनपदे अथर्वा शान्तिपारागः ।

निवसत्यसि तद् राष्ट्रं वर्धते निरुपद्रवम् ॥

तस्माद् राजा विशेषेण अथर्वागं जितेन्द्रियम् ।

दानसम्मानसत्कारैर्नित्यं समधिपूजयेत् ॥

(अथर्ववेद—सायणभाष्य भूमिका, पृ० 46)

अथर्ववेद में बीस काण्ड, 731 सूक्त और 5977 मन्त्र हैं । सबसे छोटा सूक्त एक मन्त्र का और सबसे बड़ा सूक्त 89 मन्त्रों का है । निष्कर्षतः कहा जा सकता है कि कृष्ण द्वैपायन वेदव्यास ने एक वेद को मन्त्रों की प्रकृति के अनुसार चार वेदों में विभाजन करते समय ऐहिक और व्यावहारिक जीवन में सुख एवं समृद्धि तथा समागत लौकिक विघ्न-बाधाओं, रोग-दोष के निवारण-क्रम में जिन सूक्तों और मन्त्रों की अधिक उपादेयता समझी, उनका संकलन चतुर्थवेद अथर्ववेद संहिता में किया और उनका ज्ञान सुमन्तु नामक अपने शिष्य को सर्वप्रथम कराया । ‘अथर्व’ शब्द की संगति ‘जेन्दावेस्ता’ के ‘आश्रवन’ से बैठती है, जिसका अर्थ प्रधान अग्निपूजक पुरोहित होता है, जो वहाँ की धार्मिक व्यवस्था में शीर्ष स्थान पर है । आवाहन, हव्यार्पण और मन्त्रों की संगीतमय प्रस्तुति से क्रमशः ऋग्वेद, यजुर्वेद और सामवेद सीधे यजन-कर्म से जिस प्रकार निकटता से जुड़े हैं, वैसे यह वेद नहीं जुड़ सका है । इसमें याज्ञिकता गौण और लौकिकता अधिक उपर कर आई है, इस कारण यह वेद तीनों वेदों से कुछ विलग देखा गया है । निष्कर्षतः ऋग्वेद को ज्ञान-काण्ड,

यजुर्वेद को कर्मकाण्ड और सामवेद को उपासनाकाण्ड तथा अथर्ववेद को विज्ञानकाण्ड के रूप में देखा जा सकता है ।

सफल सार्थक समुन्नत, व्यक्ति, परिवार, समाज एवं राष्ट्र-विषयक अनेक मन्त्रों में से अथर्ववेद के कुछ मन्त्रों पर दृष्टि-डालना अप्रासङ्गिक न होगा ।

कर्मठ, श्रमशील व्यक्तित्वपूर्ण जीवन का एक चित्र

कृतं मे दक्षिणे हस्ते जयो मे सव्य आहितः । (अथर्ववेद 7.52.8)

छन्दोमय भाव-विस्तार

करो सब श्रम से सच्चा प्यार ।

करो सब श्रम की जय-जयकार ॥

कर्म में रहे निरन्तर निरत,

क्रिया में दक्ष दाहिना हाथ ।

विजय का वरण करे कर वाम,

सदा सोल्लास गर्व के साथ ॥

मिले यश, धन-सम्पत्ति अपार ॥ करो सब श्रम की जय जयकार ।

आदर्श परिवार की परिकल्पना

अनुव्रतः पितुः पुत्रो मात्रा भवतु संमनाः ।

जाया पत्ये मधुमतीं वाचं वदतु शान्तिवाम्

मा भ्राता भ्रातरं द्विक्षन्मा स्वसारमुत स्वसा

सम्यञ्चः सव्रता भूत्वा वाचं वदत भद्रया ॥ (अथर्ववेद 3.30.2)

छन्दोमय भाव-विस्तार

हो मेल जोल ऐसा घर में सदा हमारे,

परिवार में बरसती जायें विपुल बहारें ।

अनुकूल निज पिता के व्यवहार पुत्र के हों,

संतुष्ट निज जननि के आशीष सीस धारें ।

पत्नी मधुर वचन से पति को प्रसन्न रखें,

पड़ती रहें निरन्तर सुख-शान्ति की फुहारें ।

विद्वेष की दरारें बहनों में पड़ सकें न,

भाई कभी न भाई को द्वेष से निहारें ।

हों एकमत कुटुम्बी मङ्गल वचन कहें नित,

आत्मीय बन परस्पर जीवन सुखी गुजारें ॥

निर्दोष समाज की परिकल्पना—

उलूक यातुं शुशुलूक जहि श्वायातुमुत कोकयातुम् ।
सुपर्णयातुमुत गृध्रयातुं दृषदेव प्र मृण रक्ष इन्द्र ॥ (अथर्ववेद 8.4.22)

छन्दोमय भाव विस्तार

जो मूर्ख कृपण धनवान तथा विचरण करते उल्लू समान
जिनका उल्लू जैसा स्वभाव, ऐसे जन को भगवन् मारें ।
जो घाती हैं, उत्पाती हैं, भेड़िए समान परम हिंसक
हम सबके बीच न रह पायें, ऐसे दुष्टों को संहारें ।
जो हैं कुते ज्यों नीच और करते स्वपक्ष पर घात सदा,
अति दूर उन्हें हमसे कर दो, वे आ न सकें मेरे द्वारे ।
जो चक्रवाक सम कामी हैं, जो हो वियुक्त रोते रहते
ऐसे खैण निकम्मों से मानव-समाज को उद्धारें ।
जो बाज समान सबल, लेकिन आघात करें बलहीनों पर
ऐसे अधमों का अन्त करें दुःख द्रन्द्वा दूर कर दें सारे ।
जो गृध्र समान मांस-भक्षी उन सब पर वज्राघात करो
रक्षा इन सबसे करो देव ! हम जीतें दुष्ट सदा हारें ।

सुखी समुन्नत राष्ट्र की परिकल्पना

यस्यां गायन्ति नृत्यन्ति भूम्यां मर्त्या व्यैलबाः ।
युध्यन्ते यस्या मा क्रन्दो यस्यां वदति दुन्दुभिः ।
सा नो भूमिः प्रणुदतां सपत्नान सपत्नं मा पृथिवी कृणोतु ॥

(अथर्ववेद 12.1.41)

छन्दोमय भाव विस्तार

रिपु से रहित सुशोभित हो मातृभूमि प्यारी ।
सम्पन्न सब तरह से यह राष्ट्र हो सुखारी ॥
इसमें छिड़ा रहे नित संगीत का तराना, होता रहे सदा ही गाना तथा बजाना ।
हो दूसरी दिशा में रण-बाँकुरे जुझारे, घूमें सदैव कर में शस्त्रास्त्र दिव्य धारे ॥
रिपु हार कर हमारे घूमें रुदन पसारे, यों शत्रु-शून्य जीवन हो राष्ट्र का हमारे ।
बजते रहें नगाड़े कहते विजय हमारी ॥
रिपु से रहित सुशोभित हो मातृभूमि प्यारी ।
सम्पन्न सब तरह से यह यह राष्ट्र हो सुखारी ॥

प्रस्तुत भाष्य 3 खण्डों में विभक्त कर प्रकाशित किया गया है । प्रथम खण्ड में 1-7 काण्डों का, द्वितीय खण्ड में 8-17 काण्डों का और तृतीय खण्ड में 18-20 काण्डों का समावेश है ।

प्रथम खण्ड—(1-7 काण्ड) मन्त्र-संख्या का सर्वयोग 2030 है ।

प्रथम काण्ड की मन्त्र संख्या 153 तथा मुख्य प्रतिपाद्य—बुद्धि-संवर्धन रोगोपशमन, मूत्रावरोध-निवारण, रक्तसाव-निवारण, हृदयरोग-निवारण, श्वेत कुष्ठ-नाशन, शीतज्वर दूरीकरण, जल-चिकित्सा, सुख-प्रसूति, क्षयरोग-विनाशन, आयुष्य-वर्धनादि है ।

द्वितीय काण्ड में मन्त्र-संख्या 207 है । मुख्य प्रतिपाद्य—अध्यात्म विद्या, ब्राह्मण धर्म, क्षत्रिय धर्म, सन्धिवात-दूरीकरण, शत्रुनाश विषयक नीति, दुष्टों का नाश, अभय-प्राप्ति, पशुधन-संवर्धन, कृमिनाश एवं दुर्गति से रक्षणानादि है ।

तृतीय काण्ड में 230 मन्त्र हैं । मुख्य प्रतिपाद्य हैं—शत्रु-सैन्य-सम्मोहन, राजा का चुनाव, राजा की राज्य पर पुनः स्थापना, राजा और राजा के पूरक अंग, वीर पुरुष, राष्ट्रीय एकता, राष्ट्र-संवर्धन, हवन से दीर्घायु, गृह-निर्माण, वाणिज्य-विकास और धन-प्राप्ति, कृषि की उन्नति, वनस्पति-विकास, ज्ञान और शौर्य, वर्चः प्राप्ति, वीर पुत्र-प्राप्ति, उन्नति की दिशा, पशुस्वास्थ्य-रक्षा, सौमनस्य-स्थापनादि ।

चतुर्थ काण्ड में 324 मन्त्र हैं । मुख्य प्रतिपाद्य हैं—ब्रह्मविद्या, शत्रु-संहारण, कुष्ठ-नाशन-योग, लाक्षा, आत्म-रक्षण, ब्रह्मविद्या, सर्प-विष-नाशन, कृत्या-परिहरण, ब्रह्मगवी, शत्रु-सैन्य-सन्त्रासन, क्रिमिघ्न योग, गर्भाधान, दीर्घायुष्य-प्राप्ति आदि ।

पञ्चम काण्ड में 376 मन्त्र हैं । मुख्य प्रतिपाद्य हैं—आत्मोन्नति (अमृतासु), सर्वश्रेष्ठ देव, विजय-प्राप्ति, ब्रह्मविद्या । शत्रुनाशन, आत्मबल, यज्ञ, सर्प-विष-नाश योग, कृत्या-प्रतिहरण, (लौटाना), रोगोपशमन, वृशारोगशमन, पातिव्रत-रक्षा, ब्रह्मगवी, शत्रु-सैन्य-सन्त्रासन, ज्वर-निवारण, ब्रह्मकर्म, दीर्घायु और तेजस्विता, रोग-कृमी-निवारणादि ।

षष्ठ काण्ड में 454 मन्त्र हैं । मुख्य प्रतिपाद्य हैं—अमरत्व-प्रद देव, देवेन्द्र, संरक्षण की प्रार्थना, वर्चस्व-प्राप्ति, शत्रु-नाशन, यज्ञ से समुन्नति, दाम्पत्य, पुंसवन, सर्प-विष-निवारण, मृत्यु, औषध, रसायन, ईर्ष्या-निवारण, आत्म-शुद्धि, क्षयरोग-निवारण, केश-वर्धक औषध, वृष्टि कैसे होती है ? दुःख दूर करने के उपाय, शाप-नाशन, वर्चस्व-वर्धन, शमी औषध, चन्द्र और पृथिवी की गति, ईश्वर की अमोघशक्ति, तेजस्विता की प्राप्ति, यशस्वी होना, निर्भयता क्रोध-शमन, दुःस्वप्न नाश, कल्याण-प्राप्ति, सूर्य-किरणों से चिकित्सा, जल-चिकित्सा, उन्मत्तता-मोचनादि ।

सप्तम काण्ड में 286 मन्त्र हैं । मुख्य प्रतिपाद्य हैं—राष्ट्र-सभा का स्वरूप, राजा

यद्यपि अथर्ववेद लौकिकता से अधिक जुड़ा है, तथापि यह नहीं भूलना चाहिए कि परलोक-पथ भूलोक से ही होकर जाता है। स्वस्थ तन और सुलझा स्वस्थ मन ही मोक्ष का अधिकारी है।

अथर्ववेद के बीसवें काण्ड के 10 सूक्तों—127 से 136 तक को 'कुन्ताप सूक्त' कहा गया है। इन सूक्तों को खिलसूक्त कहा गया है। खिल का अर्थ प्रक्षिप्त माना जाता है। इनमें न ऋषि नाम का कथन है और न देवता नाम का उल्लेख है तथा अर्थ भी अटपटा और अस्पष्ट है, तथापि इनकी भी व्याख्या की गयी है। कुछ भाष्यकारों ने इन्हें प्रक्षिप्त मानकर इन पर भाष्य नहीं किया है।

तीनों खण्डों के मन्त्रों की संख्या का सर्वयोग 5977 है।

निष्कर्षतः कहा जा सकता है कि अथर्ववेद पूर्णवेद है। इसमें लौकिकता और आध्यात्मिकता, इन दोनों का सम्यक् समन्वय है। वेद सन्तुलित जीवन को आदर्श जीवन मानता है। वहीं सम्पूर्ण जीवन है भी, इस कथन में सङ्कोच नहीं करना चाहिए। वर्तमान परिवेश में अथर्ववेद की उपादेयता अधिक है, ऐसा मेरा विचार है। इसे पूर्णवेद माना जा सकता है।

